RESEARCH PAPER

RESEARCH HUB International Multidisciplinary Research Journal
e-ISSN: 2349-7637 | Vol.09 | Iss.03 | March 2022 | pp. 8-16
Double-Blind Peer Reviewed/Refereed Journal

Concept of Sarvodaya: Gandhian Paradigm

सर्वोदय की अवधारणा : गांधीय प्रतिमान

*Dr. Jitendra Kumar Soni

MD, NHM, Rajasthan

Abstract

The great idea of Sarvodaya was in Gandhi's mind from the very beginning, which was flourishing in sync with ancient Indian philosophies like Buddha and Jain philosophy and scriptures in which Gita was main etc., but he was engaged in further refine this idea. Through this concept, Gandhi seeks the welfare of all individuals without any discrimination. It is based on the idea that the welfare of every individual can happen only when there is welfare of the entire members of the society.

Today, when the world is sitting on a pile of atoms, which can blow up at any time with a bang. The ongoing Russo-Ukraine war is an example of this. In such a situation, this concept is a ray of hope, which nurtures truth, non-violence and love for the whole world, in which everyone can be well-being. It talks about duties rather than rights. Due to which all conflicts automatically come to an end. In fact, it teaches individuals a new way of living which is free from violence and injustice.

Therefore, the purpose of the present research paper is to present the context that all the problems prevailing at present, whether it is political, social or economic, can be solved by this idea. The true democracy that the present world is looking for can be possible only from Sarvodaya Samaj which will be classless, exploitation free and discrimination free society.

Keywords: *Conceptual Discussion, Dimensions of Sarvodaya Concept, Gandhi Perspective, Democracy, Civil Rights, Gandhian Vision, Women's Discourse in Sarvodaya*

Abstract in Hindi

सर्वोदय का महान् विचार गांधी के मन में प्रारंभ से ही था, जो कि प्राचीन भारतीय दर्षन जैसे बुद्व और जैन दर्षन तथा धर्मग्रन्थों जिनमें गीता मुख्य थी आदि का समन्वय करते हुए पनप रहा था, किन्तु इस विचार को वे अधिक परिष्कृत करने में लगे हुये थे। इस अवधारणा के माध्यम से गांधी सभी व्यक्तियों का बिना किसी भेदभाव के कल्याण चाहते है। यह इस विचार को लेकर चलती है कि प्रत्येक व्यक्ति का भला तब ही हो सकता है जबकि समाज के सम्पूर्ण सदस्यों का कल्याण हो।

आज जब विष्व परमाणु के ढ़ेर पर बैठा है जो कभी भी एक धमाके के साथ उड़ सकता है। वर्तमान में चल रहा रूस–यूक्रेन युद्व इसका उदारण है। ऐसे में यह अवधारणा आषा की किरण है जो सम्पूर्ण विष्व के लिए सत्य, अहिंसा और प्रेम को पोषित करती है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति का कल्याण हो सके। यह अधिकारों की बात न करके कर्तव्यों की बात करती है। जिससे समस्त संघर्षों का अन्त स्वतः ही हो जाता है। वस्तुतः यह व्यक्तियों को जीने की एक नयी पद्वति सिखाती है जो कि हिंसा व अन्याय से मुक्त है।

अतः प्रस्तुत शोध पत्र का उद्वेष्य यही संदर्भ प्रस्तुत करना है कि वर्तमान में व्याप्त सभी समस्याओं चाहे वह राजनीतिक, सामाजिक या आर्थिक हो, का समाधान इस विचार द्वारा किया जा सकता है। वर्तमान विष्व जिस सच्चे लोकतंत्र की तलाष में है, वह सर्वोदय समाज से ही संभव हो सकता है जो वर्गविहीन, शोषणहीन और भेदभावविहीन समाज होगा।

Keywords: *अवधारणात्मक विवेचना, सर्वोदय धारणा के आयाम, गांधी परिप्रेक्ष्य, प्रजातंत्र, नागरिक अधिकार, गांधीय दृष्टि, सर्वोदय में स्त्री विमर्श*

Article Publication

Published Online: 25-Mar-2022

***Author's Correspondence**

Dr. Jitendra Kumar Soni

MD, NHM, Rajasthan.

jksoniias@gmail.com

10.53573/rhimrj.2022.v09i03.002

© 2022 The Authors. Published by RESEARCH HUB International Multidisciplinary Research Journal. This is an open access article under the CC BY-NC-ND license (https://creativecommons.org/licenses/by-nc-nd/4.0/)

सर्वोदय का शाब्दिक अर्थ है 'सबका उदय' अर्थात समाज के प्रत्येक व्यक्ति का सर्वांगीण उत्थान। सर्वोदय की आस्था भारतीय सांस्कृतिक चेतना में सदैव से अर्न्तव्याप्त रही है। शताब्दियों पूर्व भारतीय सन्तों ने 'सर्वेभवन्तु सुखिन : सर्वे सन्तु

निरामया' का जो स्वरूप रखा व सर्वोदयी आस्था की उदघोषणा का प्राचीनतम उदाहरण है। जैनाचार्य संमत भद्र ने कहा कि ''सवेयदामंत कर निरतं सर्वोदय तीथी गीदी तथैव'' अर्थात् सर्वोदय अन्तर्निहित एवं सब आपत्तियों का विनाशक है। यह मेरा तीर्थ निस्तारक ही है। गीता के 'सर्वभूतहितेरता' का तात्पर्य भी सर्वोदय ही है।

सर्वोदय विचार को आधुनिक सन्दर्भ प्रदान करने का कार्य गांधी ने ही किया है। गांधी के लिए सर्वोदय शब्द का सार अर्थ है– सब जीवन के क्षेत्र की प्राप्ति को एक साथ सुनिश्चित कर सके। प्राचीन काल में सम्युदय शब्द का प्रयोग ऐहिक वैभाव के अर्थ तक सीमित था। अतः गांधी ने केवल उदय का ही प्रयोग किया है।

सर्वोदय की गांधीवादी धारणा में जिस उदय की परिकल्पना की गई है वह वस्तुतः भौतिक परिलब्धियों या संसाधनों की उपलब्धि की और नहीं अपितु भौतिक नैतिक व आध्यात्मिक परिलब्धियों के निश्चयवाद न्यायसम्मत वितरण की आवश्यकता प्रतिपादित करती है। इस प्रकार सर्वोदय का आध्यात्मिक सन्दर्भ जहाँ मानव मात्र द्वारा परमश्रेय की उपलब्धि से संबंधित है वही उसका भौतिक सन्दर्भ समाज में वितरणात्मक न्याय की प्रस्थापना की अनिवार्यता को रेखांकित करता है।

सर्वोदय की नैतिक आस्था के महत्व का प्रतिपालन करते हुए गांधी ने कहा सर्वोदय की सिद्धि अहिंसा की सिद्धि पर निर्भर है। अहिंसा की सिद्धि तपश्चर्या पर निर्भ है तपश्चर्या सात्विक होनी चाहिए। उसमें अविश्रांत उद्यम, विवेक समविष्ट है। शुद्ध तप में शुद्ध ज्ञान प्राप्त होता है। अनुभव बताता है कि लोग अहिंसा का नाम तो लेते है। लेकिन बहुतों को मानसिक आलस्य इतना रहता है कि वह वस्तुस्थिति का परिचय तक करने का परिश्रम नहीं उठाते है। लेकिन कंगालियत कैसे हुई, इसका अर्थ क्या है? कैसे दूर हो सकती है इसका अभ्यास कितने लोग करते है? अहिंसा का भक्त तो ऐसे ज्ञान से भरा होना चाहिए।

गांधी ने सर्वोदय की धारणा के तीन अनिवार्य पक्षों का अभिज्ञान किया ।

1. सबके कल्याण में अपना कल्याण अन्तर्निहित है। इसका अर्थ है कि व्यक्तिगत और सामुदायिक हितों में कोई द्वन्द्व नहीं है। जब मनुष्य सबके हितों की बात सोचेगा तो स्वयं का हित होना स्वाभाविक है। वास्तव में समाज कोई बाह्य तत्व अथवा संकल्मण नही है। व्यक्ति की सामाजिक चेतना उसे सामुदायिक हितों के प्रति संवेदनशील बनाती है। हितों के व्यक्तिगत व सामुदायिक चेतना में समन्वय रखना तथा व्यक्तिगत स्वार्थों एवं सामाजिक हितों का संशिलष्ट रखना सर्वोदय का मुख्य आधार है। इसके बिना सर्वोदय संभव नहीं है।
2. विभिन्न कार्यों के मध्य इस आधार पर दीनता अथवा श्रेष्ठता का भेद नहीं किया जा सकता है कि उसमें शरीर श्रम विनियुक्त हुआ है। अथवा मानसिक व बौद्धिक श्रम। वस्तुतः समाज कार्य समान महत्व रखते है। अतः वकील व हज्जाम दोनों के कार्य का मूल्य एक सा होना चाहिए।
3. यह एक अत्यन्त क्रांतिकारी और विवाद ग्रस्त सिद्धान्त है। इसका यह अर्थ है कि समाज के हर व्यक्ति के कार्य को पर्याप्त आदर प्राप्त होना चाहिए। शारीरिक श्रम और बौद्धिक श्रम जो समाज के लिए हो उसे समान भाव से देखना चाहिए। वास्तव में मानव जाति का इतिहास उस शोषण की कला है जिसमें बुद्धियुक्त मनुष्य ने उन लोगों का शोषण किया जिनमें बुद्धि कम थी। उस पारिवारिक भावना का बुद्धिजीवियों ने परित्याग किया, जिसके आधार पर परिवार के प्रत्येक व्यक्ति को, उसकी क्षमता चाहें जैसी हो, समान सम्मान मिलता था। ज्ञान और कर्म के बीच ऊँचा समझना और दूसरों को नीचा, यह सर्वोदय के सिद्धान्त के विपरीत है।
4. श्रम प्रधान सरल जीवन ही सच्चा जीवन है। यह सिद्धान्त वस्तुतः पूर्व सिद्धान्त की ही निष्पति है। सहयोग पर आधारित समाज में सरल और सादा जीवन को अपनाना ही पडेगा क्योंकि निर्बाध इच्छाओं की पूर्ति समाज में सभंव नहीं है। समाज के प्रत्येक व्यक्ति को आत्मसंयम को अपनाना ही पडेगा तथा श्रम की नैतिकता को आत्मज्ञान कराना ही होगा।[1]

सर्वोदय धारणा के आयाम

सर्वोदय के तात्विक आधारों का विश्लेषण यह स्पष्ट कर देता है कि सर्वोदय की धारणा मनुष्य मात्र के उदय के संकल्प पर आधारित हैं। इस सन्दर्भ में सर्वोदय की धारण मनुष्य के हितों के मध्य एक पूर्ण विरोधहीनता की कल्पना करती है। तार्किक दुष्टि से मनुष्य मात्र के हितों के मध्य इस अनिवार्य अभेद का आधार यह है कि मनुष्यों का अंतिम लक्ष्य एक ही है और वह है सत्य के साक्षात्कार, सत्य के प्रति समर्पण की आध्यात्मिक आस्था, सर्वोदय की धारणा का मर्म है किन्तु ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि सर्वोदय दर्शन में इस मूल आस्था की अनुभूति सांसारिक व भौतिक प्रश्नों से पलायन का मार्ग नहीं सुझाती, अपितु उनके व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में ऐसे आचरण व दृष्टिकोणों की अपेक्षा करती है, जिसके द्वारा प्रत्येक मनुष्य दूसरे मनुष्य के सुखों में अपना सुख खोज सके।

सारतः सर्वोदय मानवीय नैतिकता के अद्वैतवादी अभिज्ञान की पराकाष्ठा है। सर्वोदय तत्व ज्ञान की विचारधार व कार्यक्रम के स्तर पर नैतिक, राजनैतिक व आर्थिक रूपान्तरण एक विशद् विषय है। इसके आयाम बहुविध हैं जिसमें सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक, राज नैतिक व आर्थिक संदर्भ स्वतः समाविष्ट है।

सर्वोदयः गांधी का परिप्रेक्ष्य

सर्वोदय का राजनीतिक संदर्भ गांधी के मौलिक सिद्धान्तों सत्य और अहिंसा पर आधारित है। यह मत है कि मानव मूलतः स्वार्थी और खराब होता है, गांधी को प्रभावित नहीं कर सका। इसके अतिरिक्त, इस युनानी मत से की कि राज्य अच्छे जीवन के लिए नितान्त आवश्यक है, गांधी सहमत नहीं है। उनके अनुसार मानव मूलतः अच्छा है। और उसमें दूसरों के साथ शांति से जीवन व्यतीत करने की क्षमता है।

गांधीय सर्वोदय का राजनीतिक आदर्श राज्यविहिन समाज (शासन मुक्त समाज) है, लेकिन इस आदर्श की सिद्धि एक समय साध्य प्रक्रिया है। गांधी के शब्दों में 'अहिंसा के आधार पर खड़े स्वराज्य में कोई भी किसी का शत्रु नहीं होता सभी सामान्य ध्येय के लिये अपने अपने उचित हिस्से का काम करते है' सब पढ–लिख सकते हैं। उनका ज्ञान दिनों दिन बढता रहता है।

रोग और बीमारी कम से कम होती है। कोई दरिद्र नहीं होता और मजदूरों को हमेशा काम मिल जाता है। ऐसे राज्य में जुए, शराब खौरी, दुराचार था वर्ग द्वेष के लिए कोई स्थान नहीं होता। धनवान अपना धन बुद्धिमानी से और उपयोगी ढंग से खर्च करेंगे, अपनी शान शौकत और सांसारिक सुखों को बढ़ाने में उसे बरबाद नहीं करेंगे। यह नही होना चाहिए कि मुटठी भर अमीर लोग तो रत्न जड़ित महलों में रहें और करोड़ों लोग वायु और प्रकाशहीन गन्दे झोपड़ो में रहें। हिन्दु–मुस्लिम झगड़े, अस्पृश्यता और ऊँच–नीच की भारी भेद आदि की बातें उसमें नहीं होनी चाहिए।[2]

राजनीतिक व्यवस्था का सर्वोदयी आदर्श

राजनीतिक व्यवस्था के आदर्श प्रतिभाव के रूप में गांधी ने राम राज्य की अवधारणा प्रस्तुत की । गांधी का विचार था कि नीचे से नीचे स्तर पर जनता के हाथ में ही संपूर्ण अधिकार निहित होने चाहिए और बालिग मताधिकार के द्वारा नीचे से ऊपर शक्ति हस्तांतरित की जानी चाहिए। वे तानाशाही के विरोधी थे, चाहे उसका नामकरण कुछ भी हो, और पूर्ण विकसित प्रजातन्त्र और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता में उनका विश्वास था। उन्होंने कम्यूनिस्ट सर्वसत्तावाद की निन्दा की और ब्रिटिश पद्धति के प्रजातन्त्र की भी आलोचना की। उनकी कल्पना के सच्चे प्रजातन्त्र शासन नैतिकता के आधार पर चलेंगे, बल के आधार पर नहीं, इसका उन्होंने नाम राम राज्य रखा। और उसका विवेचन इस प्रकार किया– 'राजनैतिक स्वाधीनता से मेरा मतलब यह नहीं कि ब्रिटिश पार्लियामेन्ट या रूस के सोवियत शासन या इटली के फॉसिस्ट राज्य या जर्मनी की नाजी हुकूमत की नकल की जाये।' उनकी प्रणालियाँ उनकी प्रवृति के अनुकूल हैं। हमें अपनी प्रकृति के अनुकूल प्रणाली अपनानी चाहिए। वह क्या हो सकती है, यह बताना मेरे बूते की बात नहीं। मैने उसे राम राज्य बताया है। अर्थात् उनमें शुद्ध नैतिक सत्ता के आधार पर आम जनता की सर्वोपरी सत्ता होगी।

गांधी ने राज्य का रूप व अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा कि 'इस रामराज्य का अनुवाद धार्मिक दृष्टि से पृथ्वी पर ईश्वरीय राज्य किया जा सकता है। राजनीतिक दृष्टि से इसका अनुवाद ऐसा पूर्ण प्रजातन्त्र है, जिसमें संपत्ति, रंग, जाति' धर्म या लिंग के आधार पर खड़ी असमानताएँ लुप्त हो जाती है, इसमें जनता ही भूमि और राज्य की आधिकारिणी होती है। न्याय तुरन्त मिलता है, शुद्ध मिलता है और सस्ता मिलता है और इसलिए पूजा, भाषण तथा प्रेस की स्वतन्त्रता होती है। और यह सब इसलिए होता है कि नैतिकता नियन्त्रण के स्वयं–स्वीकृत कानून का शासन होता है। इस प्रकार का राज्य सत्य और अहिंसा पर आधारित होना चाहिए और वह समृद्धशाली, सुखी और सेवाश्रयी ग्रामों और ग्राम समाजों का बना होना चाहिए।

गांधीय राजनीतिक दर्शन में लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था करते समय राज्य का आधार फौज और पुलिस का सहारा नहीं होना चाहिए, बल्कि स्वयं जनता का नैतिक समर्थन होना चाहिए। गांधी ने 'राज्य विहिन समाज' के निकटवर्ती राज्य की कामना की है।

गांधी ने थोंरो के इस ऐतिहासिक व्यक्तव्य का समर्थन किया है कि वह सरकार सबसे अच्छी है, जो कम से कम शासन करती है। उनके अनुसार यह आदर्श समाज की प्राप्ति की दिशा में एक कदम है। जिसमें कोई राजनीतिक सत्ता नहीं रहती, क्योकि कोई राज्य नहीं रहता। उन्हीं के शब्दों में 'वह राज्य पूर्ण अहिंसात्मक है जिसमें जनता पर कम से कम शासन किया जाता है।' ऐसा प्रजातन्त्र राज्य शुद्ध अराजकता, से निकट है, जो अहिंसा पर आधारित हो।[3]

प्रजातन्त्र और सर्वोदय

प्रजातन्त्र का शाब्दिक अर्थ जनता की सरकार है। प्रजातन्त्र प्रकृति के बारे में काफी मतभेद है। अगर प्रजातन्त्र की विशद् व्याख्या की जाये तो इसका अर्थ ऐसी व्यवस्था से ग्रहण किया जा सकता है जिसमें सभी सदस्य समान व स्वतन्त्र होते हैं। और किसी को भी शासन में भाग लेने से वंचित नहीं किया जाता है। इसके अन्तर्गत जो बहुमत के द्वारा मतदान के आधार पर निर्णय लिया जाता है। उसका सभी आदर करते हैं। प्रजातांत्रिक समाज में जन्म अथवा किसी अन्य आधार पर किसी भी तरह का अन्तर नहीं किया जाता है।

प्रजातन्त्र से तात्पर्य स्वशासन से होता है न कि सरकार का दूसरों के द्वारा नियन्त्रण व्यक्तियों का स्वविकास बिना किसी रूकावट के होने का विश्वास होना चाहिए। शायद इब्राहिम लिंकन के मस्तिष्क में यह बात स्पष्ट थी इसलिये उसने प्रजातन्त्र की परिभाषा इस प्रकार दी

''प्रजातन्त्र जनता का, जनता के लिये तथा जनता द्वारा शासन है''।[4]

वास्तविक व्यवहार में जनता से तात्पर्य बहुमत से है क्योंकि सभी लोग शायद ही किसी मुद्दे पर एक मत हो सकते हैं।

आज विशाल राष्ट्रों में जनता शासन करने के अधिकार का सीधा प्रयोग नहीं करती, बल्कि वह अपने चुने हुए प्रतिनिधियों के द्वारा इसका प्रयोग करती है।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्रजातन्त्र सम्पूर्ण समुदाय के शासन में भाग लेने के अधिकार पर आधारित है। दूसरी प्रकार की व्यवस्था में शक्ति किसी व्यक्ति–विशेष अथवा कुछ लोगो के हाथ में निहित रहती है। जबकि प्रजातन्त्र में सत्ता में समग्रतः जनता की भागीदारी आवश्यक मानी जाती है।

गांधीय चिन्तन में लोकतन्त्र की धारणा इस 'शब्द' से प्रचलित अर्थ, निर्वचन व अभिव्यक्ति से भिन्न है। गांधी सद्गुणी व्यक्ति एवं नैतिकतापरक समाज के प्रायोजन से प्रेरित एक ऐसे लोकतन्त्र के पक्षधर थे, जो सामान्यतः पश्चिम के विस्तार वृत से भिन्न एवं अपेक्षाकृत गहनता एवं समग्रता का सूचक हो।[5]

प्रतिनिधि संस्थाओं पर विचार

गांधी ने स्पष्ट घोष्णा की थी कि 'पश्चिम का आज का प्रजातन्त्र हल्के रंग का नाजी और फासिस्ट तन्त्र ही है।' ज्यादा से ज्यादा, प्रजातन्त्र नाजी और फासिस्ट चाल चलने का एक आडम्बर मात्र है। हिन्दुस्तान सच्चे प्रजातन्त्र का प्रयास कर रहा है अर्थात् ऐसा प्रजातन्त्र जिसमें हिंसा के लिए कोई स्थान न होगा।

गांधी पश्चिम ढंग के हालात राजनीति और विधानसभाओं के अन्दर बैन्चेज (सरकारी पक्ष) एवं ॲपोजिशन बैन्चेज के लिए अहित कर मानते थे।

लेकिन गांधी का मत था कि पश्चिम में लोकतन्त्र के सफल न होने के कारण संस्थाओं की अपूर्णता इतनी, जितनी सिद्धान्तों की अपूर्णता है विशेषकर हिंसा और असत्य उपयोगिता में विश्वास। गांधी ने विश्वास प्रकट किया कि लोकतन्त्र का विकास बल प्रयोग से नहीं हो सकता। लोकतन्त्र की सच्ची भावना बाहर से नहीं अपितु भीतर से उत्पन्न होती है।

उन्होंने दावा किया कि भारत सच्चे लोकतन्त्र के निर्माण का दावा कर रहा है, उसका हथियार सत्याग्रह होगा। उसका सही स्वरूप होगा – चरखा, ग्रामोद्योग, उद्योग के जरिये प्राथमिक शिक्षा प्रणाली, अस्पृश्यता निवारण, महानिषेध, अहिंसक तरीके से मजदूरों का संगठन और साम्प्रदायिक एकता। लोकतन्त्र के अर्थ को स्पष्ट करते हुए गांधी ने कहा कि 'प्रजातन्त्र का अर्थ मैं यह समझता हूँ कि इस तन्त्र से नीचे से नीचे और ऊचे से ऊचे आदमी को आगे बढ़ाने के समान अवसर मिलने चाहिए। लेकिन सिवाय अहिंसा के ऐसा कभी हो ही नहीं सकता।[6]

लोकतन्त्र व हिंसा का मेल नहीं बैठ सकता। जो राज्य आज नाममात्र के लिए लोकतन्त्रात्मक है उन्हें स्पष्ट रूप से या तो तानाशाही का हामी होना चाहिए या अगर इन्हें सचमुच लोकतन्त्रात्मक बनना है तो उन्हें साहस के साथ अहिंसक बन जाना चाहिए। यह कहना बिल्कुल अविचारपूर्ण है कि अहिंसा की पालना केवल व्यक्ति ही कर सकते हैं, और राष्ट्र जो व्यक्तियों से ही बनते है हरगिज नहीं।

व्यस्क मताधिकार

गांधी ने व्यस्क मताधिकार का समर्थन किया। उन्होंने कहा कि मैं व्यस्क मताधिकार का हिमायती हूँ – व्यस्क मताधिकार अनेक कारणों से जरूरी है और इसके पक्ष में जो निर्णायक कारण दिये जा सकते है उनमें से एक यह है कि वह न सिर्फ मुसलमानों को बल्कि तथाकथित अस्पृश्यों, ईसाइयों व सभी वर्गों के मेहनत मजदूरी करके रोजी रोटी कमाने वालों की उचित आकांक्षाओं को संतुष्ट करने का सामर्थ्य देता है। मैं इस विचार को बर्दास्त भी नहीं कर सकता कि ऐसे किसी आदमी को जो चरित्रवान है। किन्तु जिसके पास धन या अक्षर ज्ञान नहीं हो तो मताधिकार न दिया जावे या कोई आदमी जो ईमानदारी के सशरीर श्रम करके रोजी कमाते हैं। महज गरीब होने के अपराध के कारण मताधिकार से वंचित रहें।

मतदाताओं की आयु के सन्दर्भ में गांधी 21 वर्ष के ऊपर या 18 वर्ष के ऊपर सभी व्यस्कों के मताधिकार के पक्ष में थे। लेकिन वे अपने जैसे बूढे आदमी को इस मताधिकार से अलग रखना चाहते थे, जो मरणोन्मुख है, उनके मताधिकार की कोई उपयोगिता नहीं । सारांशतः गांधी का मत था कि जो 18 से 50 वर्ष के बीच की अवस्था के हों और जो शरीर श्रम द्वारा राज्य की सेवा करते हों उन्के के लिए मताधिकार सुरक्षित रहना चाहिए 50 वर्ष से अधिक अवस्था वाले व्यक्तियों को केवल नैतिक प्रभाव होगा किन्तु उनके हाथ में मत द्वारा प्राप्त राजनीतिक सत्ता नहीं होगी।

निर्वाचन एवं प्रतिनिधित्व

महात्मा गांधी निर्वाचन और प्रतिनिधित्व के विरोधी नहीं थे। लेकिन उसके प्रचलित स्वरूप के प्रति उन्हे कोई आकर्षण नहीं था उन्होंने कहा कि निर्वाचन के संदर्भ में लोग प्रसन्नतापूर्वक विश्वास करते हैं और ऐसा करके ही वे अपने शासन की स्थापना करते हैं। लेकिन उनका विश्वास वस्तुतः कभी पूर्ण नहीं हो पाता। चुनावों द्वारा एक शोषणकारी वर्ग जन्म लेता है। जिसके द्वारा व्यक्ति का नैतिक पतन कर दिया जाता है। अपने स्वराज का अर्थ बताते हुए गांधी ने लिखा है कि–

'स्वराज से मेरा अर्थ है उन व्यस्क स्त्री–पुरूषों की अधिकतम संख्या का निश्चित अनुमति द्वारा भारत का शासन जो भारत में या तो उत्पन्न हुए हो, या बस गये हों, जिन्होंने शरीर श्रम द्वारा राज्य की सेवा की हो और जिन्होंने मतदाताओं की सूची में अपना नाम दर्ज करवाने का कष्ट उठाया हो। गांधी ने कहा कि यदि अपने विवेक के अनुसार संविधान बनाने की उन्हें स्वतन्त्रता होगी तो राज्य शासन उन थोड़े से प्रतिनिधियों के हाथ में होगा जिनको जनता चुनती और हरा सकती है। उनका स्पष्ट मत थ कि चुनावों का उम्मीदवार वहीं हो सकता है। जो स्वार्थहीन होकर, समाज सेवा की भावना से प्रेरित होकर चुनाव लड़ना चाहता है।[7]

नागरिक अधिकार के संबंध में गांधी के विचार

गांधी व्यक्ति के अधिकारों के प्रबल समर्थक थे। और सभी को समान रूप से अधिकार दिलाना चाहते थे। दक्षिण अफ्रीका में उन्होंने जातीय भेदभाव का विरोध किया। दक्षिण अफ्रीका में गांधी का सत्याग्रह नागरिक अधिकारों का निडरतापूर्वक समर्थन करने के लिए था। गांधी ने अधिकारों की राजनीतिक अवधारणा को व्यक्ति के आध्यात्मिक व नैतिक विकास के लिए नितान्त आवश्यक माना। सच्चे जनप्रतिनिधि के रूप में गांधी ने निम्नतम व दरिद्रतम व्यक्तियों के अधिकारों के लिए संघर्ष किया।

अगस्त 1942 में कांग्रेस कमेटी को दिये गये ऐतिहासिक भाषण में उन्होंने कहा 'मैं तुरन्त स्वतन्त्रता चाहता हूँ, इसी रात को, सूर्योदय से पहले।[8]'

गांधी ने स्वतन्त्रता का प्रतिपादन राष्ट्रीय स्वतंत्रता के अर्थ में किया। उन्होंने 'स्वतंत्रता के गुलाब' की मांग की।

गांधी भारत के करोड़ो लोगों के लिए स्वतन्त्रता चाहते थे। उनकी स्वराज्य की धारणा अनिवार्यताः लोकतांत्रिक थी। उनका मत था कि नागरिक स्वतन्त्रताएँ लोकतन्त्र का आधार है। गांधी ने 1940 में युद्ध के दौरान भी विचार और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता की मांग की। उन्होंने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी 16 सितम्बर 1940 की बैठक में कहा कि यदि ब्रिटिश लोग अपनी स्वतन्त्रता के लिए अंतिम समय तक लडेंगे और सब उचित है तो उन्हें भी विचार और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता देनी होगी।

इस प्रकार 1940 में गांधी ने अखिल जनता के लिए भी भाषण की स्वतन्त्रता, स्वतन्त्र प्रेस व शुद्ध न्याय की मांग की। वे न्यायपालिका की स्वतन्त्रता, एवं पूर्ण नागरिक स्वतन्त्रता भी चाहते थे।

गांधी ने विचार और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता को बहुत अधिक महत्व दिया। इसी आधार पर उन्होंने 'रॉलेट एक्ट' का विरोध किया क्योंकि उसके द्वारा भारतीयों से अपील, वकील व दलील का अधिकार छीना जा रहा था।

गांधी व्यक्तिगत अधिकारों के प्रबल पक्षधर थे, तथापि उनके अधिकार संबंधी दृष्टिकोण को व्यक्तिवाद की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। उन्होंने व्यक्ति–स्वातन्त्रय के अनिवार्य सामाजिक सन्दर्भ पर बल देते हुए व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की धारणा को एक ऐसा विलक्षण आयाम प्रदान किया जिसमें व्यक्ति और समुदाय के हितों का द्वन्द्व विलिन हो जाता है तथा उनके मध्य अनिवार्यता पारस्परिकता के भाव का उदय होता है।[9]

अधिकार एवं कर्तव्यों की पारस्परिकता

गांधी दर्शन का महत्व इस रूप में है कि उन्होंने अधिकारों के साथ साथ कर्त्तव्यों पर बल दिया है। गांधी ने कहा कि अधिकार इसलिए अनिवार्य है कि उनसें कुछ अच्छाइयों को प्राप्त किया जा सकता है किन्तु इससे पूर्व आवश्यकता अधिकारों के नैतिक प्रशिक्षण की है। गांधी की दृष्टि से कर्तव्यों का पालन व्यक्ति के जीवन मरण का प्रश्न था। गांधी की मान्यता थी कि बिना अच्छी तरह कर्तव्यों का पालन किये अधिकार प्राप्त नहीं हो सकते और यदि किये जाते है तो उनकी शब्दावली मे यह अपहरण है।

गांधी ने जहॉ एक और रामस जैफरसन की भांति व्यक्ति के अधिकारों की वकालत की वही दूसरी और उन्होंने मैजिनि की भांति कर्तव्यों पर भी बल दिया।

गांधी समाचार पत्रों की अबाध स्वतन्त्रता के पक्षधर नहीं थे। उन पर बाह्य अंकुश लगाने के स्थान पर आंतरिक अंकुश लगाना चाहते थे। समाचार पत्रों के सन्दर्भ में उन्होंने कहा कि मेरे सामने विविध पत्रों के ऐसे उदाहरण है। जिनमें बहुत ही आपत्तिजनक बातें है उनमें साम्प्रदायिक भावनाओं को उभारने की कौशिश है, हकीकतों को गलत ढंग से पेश किया गया है। और हत्या की हद तक राजनीतिक हिंसा की उत्तेजना दी गई है। सरकार चाहे तो ऐसे लेखों के लेखकों के खिलाफ मुकदमा चला सकती है या उन्हें रोकने के लिए दमनकारी कानून अपना सकती है। लेकिन इन उपायों से अभिष्ठ लक्ष्य की सिद्धि या तो नहीं या बहुत अस्थाई तौर पर होती है और इन लेखकों का मानस परिवर्तन तो इनसे कभी नहीं होता। कारण जब उन्हें अपनी बात प्रचार के लिए समाचार पत्रों का खुला स्थान नहीं मिलता तो वे अक्सर गुप्त प्रचार का आश्रय लेते हैं। इस बुराई का इलाज तो ऐसे लोकमत का निर्माण करना है जो इस प्रकार के जहरीले पत्रों को आश्रय देने से इंकार कर दे। समाचार पत्रों की स्वतंत्रता एक कीमती अधिकार है लेकिन इस अधिकार के दुरूपयोंग के लिए मामूली प्रकार की कानूनी रोक के सिवा कोई दूसरी कानूनी रोक न हो।[10]

सांस्कृतिक पक्ष

गांधी सम्प्रदाय व धर्म के नाम पर समाज में झगड़े के कट्टर विरोधी थे। गांधी ने इसका मूल कारण भय, प्रतिशोध अविश्वास एवं असंभव आकांक्षाओं के टकराव को माना।

उन्होंने माना हिन्दु और मुसलमान एवं सभी अन्य जातियों एवं सम्प्रदायों के प्रायोजन हित एंव संगठन में समग्र राष्ट्रीय हितों की पूर्ति संभव है।

गांधी हिन्दु–मुस्लिम एकता के सन्दर्भ में ह्रदय परिवर्तन को निर्णायक माना। राष्ट्रवाद के व्यापक सन्दर्भ में गांधी ने विभिन्न धर्मों के लोगों में किसी प्रकार की भिन्नता को स्वीकार नहीं किया। उनका विश्वास था कि औपचारिक तथा प्रत्यक्ष विविधताओं के बावजूद देश की सामाजिक शांति का निर्माण केवल उसी स्थिति में संभव है जब विविधताओं में एकता को सशक्तः बनाकर राष्ट्रीय प्रयोजन को गांधी निरपेक्षवाद का समानार्थक एवं प्रतीक मानकर अपेक्षा करते थे कि प्रत्येक समुदाय तथा सम्प्रदाय अपने सीमित तथा संकीर्ण हित का निराकरण कर राष्ट्रीय प्रयोजन सिद्ध कर सकता है। गांधी ने भारतीय समाज में व्याप्त बुराइयों पर कठोर प्रहार करते हुए समाज का नव–निर्माण करने का प्रयत्न किया।

गांधी के चिन्तन का केन्द्र बिन्दु धर्म ही था। गांधी का ईश्वर तथा परम शक्ति में विश्वास था।

जब हिन्दु धर्म की परिभाषा के सन्दर्भ में गांधी से पूछा गया तो उन्होंने कहा यद्यपि मैं एक सनातनी हिन्दु हूँ तो भी हिन्दु धर्म की व्याख्या नहीं कर सकता। एक सामान्य मनुष्य की तरह, जो धर्म का पंडित नहीं है, मैं यह कह सकता हूँ कि हिन्दु धर्म सब बातों का सब तरह से आदर का एक पात्र समझता है। सहिष्णुता में अपने धर्म की अपेक्षा अन्य धर्मों के प्रति निष्कारण हेय भाव किया है, जबकि अहिंसा अन्य धर्मों के प्रति हमें वहीं आदर करना सिखाती है जो हम अपने धर्म के प्रति करते हैं।

गांधी ने अन्तर्राष्ट्रीय बन्धुत्व संघ के सम्मुख भाषण देते हुए 1928 में कहा था कि सभी धर्म सच्चे हैं। सब धर्मों में कोई न कोई खराबी है। सभी धर्म मुझे उतने ही प्रिय है जितना मेरा हिन्दु धर्म।

सर्व धर्म समभाव गांधी के सर्वोदय की धारणा में केन्द्रीय महत्व रखता है। यह बात इस अर्थ में सर्वोदयी तत्व ज्ञान बिन्दु है कि किसी भी प्रकार का आर्थिक वैयक्तिक सत्ता के अद्वैत के सिद्धान्त के संगत नहीं हो सकता।[11]

सर्वोदय में स्त्री विमर्श

1- स्त्री पुरूष संबंधः गांधी ने स्त्रियों को पुरूषों के समान ही अधिकार और आजादी देने का पक्ष किया। स्त्री पुरूष के बीच प्रतिस्पर्धा को गांधी ने उचित नहीं माना। गांधी ने पर्दा प्रथा पर आघात किया। उन्होंने कहा कि पर्दे से चरित्र की पवित्रता नहीं आती है। चरित्र का विकास तो भीतर से होता है। बालविवाह को गांधी ने अत्यन्त अनैतिक माना। उन्होंने विधवा विवाह का पक्ष लिया। गांधी का कहना था कि स्वेच्छापूर्वक विधवा रहना हिन्दु धर्म की एक अमूल्य देन है। लेकिन जबरन विधवा रखना श्राप है। गांधी ने स्त्रियों की सामाजिक और आर्थिक स्वतन्त्रता का ही पोषण नहीं किया बल्कि उनकी राजनैतिक स्वतन्त्रता की भी वकालत की। उन्होंने स्त्रियों का मताधिकार का पक्ष लिया। वेश्यावृति को उन्होंने घोर अभिशाप माना।

गांधी गीता के इस संदेश में विश्वास करते थे कि व्यक्ति अपने स्वधर्म का पालन कर परमपद प्राप्त कर सकता है। इसलिये जहॉ भी जिस प्रवृति में रहें, हमें अपने स्वधर्म का पालन करना चाहिए। प्रकृति ने परिवार के पालन व रक्षण के लिए पुरूष को समर्थ बनाया है। स्त्री प्रकृति से ही परिवार की माता के रूप में बच्चों का लालन पालन करने तथा इस गृहस्थी का गुरूत्तर भार उठाने योग्य बनी है। अतः स्त्री और पुरूष एक दूसरे के पूरक है। दोनों के परस्पर सहयोग के बिना दोनों का अस्तित्व असंभव है। मानव सृष्टि व विकास के लिए दोनों का महत्व बिल्कुल बराबर है।

स्त्री पुरूष के बीच समानता के विचार का पोषण करते हुए गांधी ने लिखा, स्त्रियों के अधिकारों के सवाल पर मैं किसी तरह का समझौता नहीं कर सकता। मेरी राय में उन पर वैसा कोई कानूनी प्रतिबन्ध नहीं लगाया जाना चाहिए जो पुरूष पर न लगाया गया हो। पुत्रों ओर कन्याओं के बीच किसी तरह का भेद नहीं होना चाहिए। इसके साथ पूरी समानता का व्यवहार होना चाहिएं।

गांधी ने कहा कि स्त्री और पुरूष कि समानता का अर्थ यह नहीं है कि उनके पेशें भी समान हों। स्त्री द्वारा शस्त्र धारण किये जाने पर कानूनी रोक नहीं हो सकती, किन्तु उसकी स्वभाविक प्रवृति ऐसे काम न करने की होगी जो पुरूषों की शोभा है। प्रकृति ने दोनों को एक–दूसरे के पूरक के रूप में सृजित किया है। उसकी शारिरिक संरचना के समान ही उसके कार्य भी सर्वथा परिभाषित है।

सारांशतः गांधी नारी सुधार की उस असन्तुलित नीति के पक्ष में नहीं थे, जिसमें स्त्रियों को पुरूषों द्वारा किये जाने वाले कार्यों को करने को कहा जाता हो। तथा उनकी एक–दूसरे के पूरक होने की स्थिति में प्रति दण्डित में परिवर्तित कर दिया जाता है।

2. विवाहः गांधी ने स्वीकार किया था कि समान्य तौर पर स्त्री पुरूष के लिए एक आध्यात्मिक दिशा पकड़कर विवाहित जीवन बिताना आदर्श है। उन्हीं के शब्दों में समाज सेवा के लिए स्त्रियों का अविवाहित रह जाना सचमुच एक अत्यन्त ऊँचा आदर्श है, किन्तु ऐसी तो लाखों में एक ही होगी। शुरू में गांधी बह्मचर्य वृत का पालन श्रेयकर समझते थे। किन्तु अनुभव से धीरे–धीरे उन्हें स्त्री पुरूष दोनों के लिए इसमें व्यावहारिक कठिनाइयों एवं अनिष्कारी संभावनाऍ मालूम हुई।

इसलिये सत्य भक्त होने के नाते उन्होंने विवाहित जीवन के आदर्श पर अपने विचार निम्न शब्दों में व्यक्त किये।

विवाह जीवन की एक स्वभाविक वस्तु है, इसलिये इसको किसी प्रकार गौरवहीन मानना गलत है। यदि कोई व्यक्ति इसको अपना पतन मान लेता है तो फिर उसके लिए ऊँचा उठना कठिन है। इसलिए विवाह को एक पवित्र संस्कार समझना चाहिए और संयमित जीवन बिताना चाहिए। विवाहित या ग्रहस्थ जीवन को हिन्दु समाज के चार आश्रमों में एक आश्रम है और यदि सच पूंछा जाये तो शेष तीन आश्रम भी इसी पर आधारित है।[12]

3. प्रचलित कुरीतिया एवं गांधीय समाधान

1. दहेज प्रथाः गांधी विवाह की संस्था के शुद्ध स्वरूप को दुषित करने वाली दहेज प्रथा के विरोधी थे। उन्हीं के शब्दों में, यह प्रथा नष्ट होनी चाहिए। विवाह लड़के–लड़की के माता पिताओं द्वारा पैसे ले देकर किया गया सौदा नहीं होनी चाहिए।

   गांधी के अनुसार जब तक चुनाव का क्षेत्र जाति विशेष तक मर्यादित होगा तब तक यह प्रथा बनी रहेगी। इस प्रथा को तोड़ने के लिए उन्होंने जाति बन्धन को तोड़ने की सलाह दी।

   इस सबका अर्थ है चरित्र की ऐसी शिक्षा, जो देश के युवकों और युवतियों के मानस में आमूल परिवर्तन कर दे।

   कोई भी ऐसा युवक, जो दहेज को विवाह की शर्त बनाता है। अपनी शिक्षा को कलंकित करता हैं और नारी जाति का अपमान करता है। देश में आजकल बहुतेरे आन्दोलन चल रहे है। मैं चाहता हूॅ कि ये आन्दोलन इस किस्म की सेवाओं को अपने हाथ में ले। ऐसे संघटनों को किसी ठोस सुधार कार्य का प्रतिनिधि होना चाहिए और वह सुधार कार्य उन्हें अपने अन्दर से ही शुरू करना चाहिए।

2. बाल विवाहः गांधी के अनुसार बाल विवाह अनैतिक एवं अमानवीय कृत्य है। जिससे भोली भाली लड़कियॉ पुरूष की विषय वासना की तृप्ती का साधन मात्र बनती है। छोटी उम्र में ही मॉ बन गयी लड़कियों का स्वास्थ्य नष्ट होता है और इन सबसे बड़कर किशोरी कन्याए विधवाओं की दुर्गती को प्राप्त होती हैं।
   गांधी के अनुसार बाल विवाह केवल नैतिक व सामाजिक कुरीति ही नहीं अपितु स्वराज्य की प्राप्ति में भी बाधक है। उन्होंने इस समस्या को देश के स्वतन्त्रता संग्राम से जोड़ा और जन साधारण की राष्ट्रीय भावनाओं को उद्घोषित करते हुए इस पर प्रहार किया। उन्होंने स्वयं स्त्रियों को आह्वान किया कि वे नारी जाति के कल्याण के लिए कार्य करें उनकी मान्यता थी कि स्त्रियों की बुरी स्थिति के लिए पुरूष को दोषी ठहराना अर्थहीन है और कहा कि उन्हें गृहणियों एवं विधवाओं के बीच जाकर काम करना चाहिए और बाल विवाह को ही सर्वथा असंभव बना देने का प्रयास करना चाहिए।

3. विधवा विवाह की समस्याऍः भारतीय नारी का जीवन जिन विविध विचारों से संकटग्रस्त था, उसमें सर्वाधिक गंभीर विचार भारतीय समाज की विधवाओं की स्थिति से संबंध था। यह समस्या कन्याओं की अल्प आयु विवाह कर दिये जाने की परिपाटी से गहरी जुडी है। कच्ची उम्र में ही लड़कियों का विवाह कर दिया जाता था जबकि वह विवाह का अर्थ समझने में असमर्थ थी। सदियों से विधवायें नरकीय जीवन जी रही थी, जिसमें अपमान और पीड़ा के अतिरिक्त कुछ नहीं था। यह समस्या इतनी विकट थी कि सभी समाज सुधारकों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ और उन्होने विधवाओं के पुनर्विवाह का प्रतिपादन किया तथा जनचेतना के परिष्कार द्वारा इस स्थिति को सुधारने का प्रयास किया था।

उनके विचार में केवल उसी विवाह को पवित्र कहा जा सकता है जिसमें विवाह के समय कन्या पूर्ण विकसित हो।

विधवा विवाह के विषय में गांधी के दृष्टिकोण का सार इस रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है, गांधी स्वयं आवश्यक रूप से विधवाओं के विवाह के समर्थक नहीं थे। उनके अनुसार सामान्यतः विधवा स्त्री विधुर पुरूष दानों को ही पुनर्विवाह नहीं करना चाहिएं। उनका कहना था कि मैं तो हिन्दु विवाह नियमों में यह सुधार प्रस्तावित करना चाहता हूॅ कि किसी भी विधवा अथवा विधुर द्वारा फिर से विवाह करना पाप समझा जाये, यदि उन्होंने अपना पहला विवाह परिपक्व आयु में किया था।[13]

गांधी का संघर्ष उस व्यवस्था के विरूद्ध था जिसमें बाल विधवाओं का जन्म होता है, जिन्हे वे हिन्दु धर्म का कलंक मानते थे। वस्तुतः उनका संघर्ष विधवाओं के पुनर्विवाह के प्रति अभिप्रेत न होकर बाल विवाह के उन्मूलन के प्रति केन्द्रित था।

वास्तव में ''सर्वोदय'' समाजवाद का पूर्ण रूप हैं। यह गांधी युग की महान् देन है। यह व्यक्ति के विचारों और उसके आचरण में क्रांति पैदा करने वाला दर्शन है। इसके अन्तर्गत जिस उदय की परिकल्पना की गई है वह वस्तुतः भौतिक परिलब्धियों या संसाधनों की उपलब्धि की ओर नहीं, अपितु भौतिक, नैतिक व आध्यात्मिक परिलब्धियों के निश्चयवाद न्यायसम्मत वितरण की आवश्यकता प्रतिपादित करती है।

इस प्रकार सर्वोदय का आध्यात्मिक संदर्भ जहाँ मानवमात्र द्वारा परमश्रेय की उपलब्धि से सम्बन्धित है, वहीं उसका भौतिक संदर्भ समाज में वितरणात्मक न्याय की प्रस्थापना की अनिवार्यता को रेखांकित करता है।

सन्दर्भ

1. रामजी सिंह : *'गांधी दर्शन मीमांसा'*, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, पृष्ठ 38
2. घीरेन्द्र मोहन दत्त : *''महात्मा गांधी का दर्शन ''* श्री पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1986, पृष्ठ 23
3. विनोबा भावे : *''सर्वोदय विचार और स्वराज्य शास्त्र''*, अखिल भारतीय सर्व सेवा संघ प्रकाशन, काशी, 1958, पृष्ठ 48
4. गोपी नाथ धवन : *'सर्वोदय तत्व दर्शन'*, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1951, पृष्ठ 237
5. एम.के. गांधी : *'हरिजन'*, 25 मार्च 1939,
6. एम.के. गांधी : *'हरिजन'*, 2 जनवरी, 1937
7. एम.के. गांधी : *'द मॉडर्न रिव्यु'*, 1935
8. बी.एन.पाण्डे : *'गांधी महात्मा समग्र चिन्तन'* गांधी स्मृति एवम् दर्शन समिति, नई दिल्ली, पृष्ठ 68
9. एम.के. गांधी : *'यंग इण्डिया'*, 2 जनवरी 1932
10. जनार्दन पाण्डेय : *'सर्वोदय का राजनीतिक दर्शन'*, जानकी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1971, पृष्ठ 25
11. एम.के. गांधी : *'हरिजन'* 2 फरवरी, 1937
12. एम.के. गांधी : *'यंग इण्डिया'*, 28 अप्रेल 1932
13. प्रतिभा जैन : *'गांधी चिन्तन ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य'*, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर 1984, पृष्ठ 92